INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS

VOLUME 2, ISSUE 10 October, 2014

ISSN-2320-2882

ORIGINAL ARTICLE

राजेन्द्र यादव जी की आत्मकथाः विश्वास व अविश्वास की द्वन्द्वात्मकता

डा॰ किरण ग्रोवर
एसो. प्रो. स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
डी. ए. वी. कॉलेज, अबोहर

सारांश–

मानसिक प्रौढ़ावस्था के मोड़ पर लेखक के परिपक्व संस्कार स्मृति, सत्य व साहस का सम्बल लेकर आत्माभिव्यक्ति के लिए व्यग्र हो उठते हैं तब कलात्मक आत्मकथा का जन्म होता है। साहित्यिक आत्मकथाकार अपने अन्तर्मुखी मन को विशिष्ट स्व के प्रतिच्छायित करते हुए निजता का निर्वाह करते है। साहित्यकारों की आत्मकथाएँ तथ्याश्रिता के आधार पर अपना पृथक् रूपभेद निर्मित करती हुई प्रमाता के अन्तःकरण पर विशेष छाप छोड़ती हैं। राजेन्द्र यादव जी ने अपने आत्मकथ्यांश 'मुड़–मुड़ के देखता हूँ" के अन्तर्गत जीवन के उन अंशों को विवेचित किया है जो भावी पीढ़ी के निमित्त खाद स्वरूप निरूपित हो सकते हैं। पुरुष व्यक्तित्व के अनुद्घाटित आयामों को खोलते हुए घर की लालसा, निर्बन्ध उत्तरदायित्वहीनता, रचनात्मक ऊर्जा का नवीनीकरण, महिलाओं की संगति के सन्दर्भ अपनी विचारधारा का सम्यक् निरुपण किया है। इस आत्मकथा के अन्तर्गत द्वन्द्वात्मकता को उकेरते हुए जीवन की भौतिकता व भावनात्मकता के समृद्ध होने के इतिहास को रेखांकित किया है।

बीज शब्दः– आत्मकथा, राजेन्द्र यादव, द्वन्द्वात्मकता, रागात्मकता, साहित्यकार।

मूल प्रतिपादनः–आत्मकथा किसी व्यक्ति विशेष द्वारा विगत जीवन अनुभव को वर्तमान के स्तर पर निष्पक्षरूपेण प्रस्तुत करने का प्रयास है जिसे कलात्मक रीति से इस प्रकार का विशिष्ट बोध समष्टि के सहज बोध में परिणित हो सके। आत्मकथा भोगे हुए क्षणों का आदिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक सुख–दुःखों का सच्चा लेखा–जोखा होता है। आत्मकथा में रचनाकार के जीवन अनुभवों का सार्वकालिक, सार्वदैहिक और सार्वजनिक पक्ष उद्घाटित होता है। आत्मकथाकार 'स्व' के बहाने से परिवेशगत चरित्रों, सामाजिक रूढ़ियों, राजनीतिक आन्दोलनों, सांस्कृतिक क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं, शिथिलताओं का भी अंकन करता है। आत्म–प्रकाशन की अदम्य भावना आत्मकथा के लेखन का सशक्त प्रयोजन है। रागात्मकता वृत्ति की अधिकता के कारण भावनाओं का सहज उच्छलन आत्मकथा के प्रणयन का कारण हो सकता है।[1] जीवन के किसी विशिष्ट स्थिर बिन्दु पर पहुँचकर जब कोई अपने विगत जीवन का लेखा–जोखा अपने मन की शान्ति के लिए करना चाहे कि उसका संसार में अस्तित्व क्या है, वह कैसे विकसित हुआ, अपनी वर्तमान स्थिति को कैसे प्राप्त हुआ। इस ऊहापोह से भरे प्रश्नों के समाधान के लिए वह अपने विगत जीवन का सिंहावलोकन करता है।[2]

Please cite this Article as डा॰ किरण ग्रोवर,राजेन्द्र यादव जी की आत्मकथाःविश्वास व अविश्वास की द्वन्द्वात्मकता :International Journal Of Creative Research Thoughts, Volume 2, Issue.10, October, 2014

मानसिक प्रौढ़ावस्था में जब प्रख्यात व्यक्ति अपने अतीत पर दृष्टिपात करते हुए घटनाओं, पात्रों, स्थितियों, परिस्थितियों आदि का निष्पक्ष होकर श्रृंखलाबद्ध वर्णन करता है, जो उसके व्यक्तित्व निर्माण में साधक या बाधक रही हों, तो वह कृति आत्मकथा कहलाती है। आत्मकथा लेखक की स्थिति विशिष्ट अन्तर्द्वन्द्व से सम्पूरित होती है। साहित्यकारों के जीवन रहस्य को जानने का मानव–मन में सहज कौतूहल होता है। आत्मकथाएँ इस कौतूहल के उपशासन में सहायक होती है। आत्मकथा साहित्य यह अपेक्षा रखता है कि लेखक अपने समस्त गुणों और अवगुणों का सम्यक् निरूपण करें लेकिन यह कार्य दुधारी तलवार पर चलने के समान कठिन व्यवसाय है।[3]

जीवन और साहित्य का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। वैयक्तिक जीवन में साहित्य के गूढ़ तत्त्व निहित रहते हैं। सामान्यतः साहित्य को जीवन की आलोचना कहा जाता है, साहित्य में रचनाकार अपने परिदृष्ट अनुभवों, अर्जित स्मृतियों को असमर्थ संकेतों के द्वारा यथाशक्य सम्प्रेषित करने को आतुर रहता है। वास्तव में साहित्य एक बच्चा है, साहित्यकार उसकी माँ है और परिवेश उसका पिता है। स्पष्ट है कि परिवेश ही साहित्यकार को साहित्य लिखने के लिए प्रेरित करता है। साहित्यकारों की आत्मकथाएँ अनुभव जगत के वसीयतनामे हैं जिनमें वैविध्य एवं एकांतिकता, सांसारिकता और फक्कड़पन जैसी परस्पर विरोधी धाराएँ सम्पूर्ण संवेदनशीलता से मिलती है। विश्वसनीयता व यथार्थ–बोध साहित्यकारों की आत्मकथा की विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं।

भुक्त यथार्थ की अभिव्यंजना में आत्मकथा लेखक स्वयं अपने कार्यों का कार्य–कारण सहित ब्यौरा प्रदत्त करता है। साहित्यकारों ने अपने जीवन के रहस्यमय व प्रच्छन्न अनुभव अपनी आत्मकथा में लिखकर पाठकों के सम्मुख विश्लेषणार्थ प्रस्तुत किए हैं।[4] साहित्यकार स्त्री या पुरुष मानवीय सम्बन्धों की पृष्ठभूमि में अपना जीवन यापित करते हैं। विश्वसनीयता व आधुनिकता के समावेश ने साहित्यकारों की आत्मकथाओं में जीवनमूल्यों को किस हद तक प्रभावित किया है। दाम्पत्येतर सम्बन्धों से जुड़ने की प्यास बहुआयामी होती हैः दाम्पत्य सम्बन्धों में असन्तुष्टि को साहित्यकारों ने आत्मकथाओं में कितना बेबाकी से स्वीकार किया है। साहित्यकारों ने आत्मकथाओं में उन ज़मीनी सच्चाइयों का विश्लेषण किया है जिससे जीवन में ठहराव व गहराई संस्पर्शित होती है। आत्मकथाकारों ने नारी को अपने जीवन की आवश्यकता, अनिवार्यता के रूप में रूपायित किया है।[5] साहित्यकारों ने आत्मकथाओं में 'स्व' को उद्घाटित करने की आन्तरिक विवशता से आत्मकथा लेखन सम्पन्न किया है । आत्मकथाओं में साहित्यकारों के व्यक्तिगत जीवन के पहलू स्वतः खुलते चले जाते है।

राजेन्द्र यादव जी ने दूसरों की दी हुई स्मृतियों को छीलकर अपने वास्तविक की तलाश का दूसरा नाम 'आत्मकथा' स्वीकारा है। अपने आत्मकथ्यांश 'मुड़–मुड़ के देखता हूँ" के अन्तर्गत स्मृति खंडों के अंशों को विवेचित किया है। तस्वीरों के माध्यम से अपने अक्स को पहचानने का उपक्रम राजेन्द्र यादव जी ने इस आत्मकथा के माध्यम से किया है। स्त्री पुरुष का आकर्षण सहज व स्वाभाविक होता है। यादव जी ने अपने अनुभव खडों का क्रम संधान करके आत्मनिरीक्षण किया है। स्त्री के प्रति पुरुष का मानसिक आकर्षण सार्वजनीन व सार्वकालिक सत्य है। पुरुष की जीवन साधना में स्त्री सबसे अधिक सहायक है। दाम्पत्य पूर्व सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में राजेन्द्र यादव जी ने मीता के संग अपने सम्बन्धों का विश्लेषण बेबाकी से किया है। मीता के सम्बन्ध में यादव जी की अनुभूति प्रवणता का चित्र इस प्रकार है –'वह थी भी दबंग और दुस्साहसी –घर भर से उसकी की ही इच्छा आगरा के बाहर भी माँ को बताकर आती कि मेरे साथ जा रही है..... मैंने बोतल खोलने से पहले धीरे से पूछा, "सामने ये लोग हैं इनके सामने। उनका प्रतिप्रश्न था

तुम्हारे रिश्तेदार हैं क्या? नहीं, फिर भी उसने बात काट दी, "मेरे भी नहीं हैं।"..... हंसकर हमने घूँट भरे।''[6]

प्रेमी–प्रेमिका का प्रेम सम्बन्ध शाश्वत व सनातन माना जाता है। प्रेम पात्र के प्रति निष्ठा का भाव राजेन्द्र जी के मन में विद्यमान था। लेकिन मीता ने जब वैवाहिक सम्बन्ध का प्रस्ताव रखा तो राजेन्द्र यादव जी ने अपनी भाव धारा को इस प्रकार सम्प्रेषित किया–"चौदह पन्द्रह साल की उम्र से मैं ही उसका एकमात्र भावनात्मक आधार रहा हूँ। क्या यह काफी नहीं। पति पत्नी बनने का आग्रह क्यों ? –''मैं तुम्हारी परिणिता बनकर रहूँ यह मेरा सपना कभी नहीं था..... इसके बाद भी अनेक बार हमने शादी की तारीखें तय कर ली। और उसने एक घर होने के सारे सपने संजो लिए..... अपने इस विश्वासघात ने शायद मुझे ही बार–बार तोड़ा है।''[7]

मीता से न मिल पाने की विडम्बना का सशक्त प्रतिपादन राजेन्द्र जी ने किया है – "हम दोनों ही दो ऐसे स्वतन्त्र ध्रुव थे कि बीच का सेतु नहीं मिल रहा था..... मज़बूरी यही थी कि अपनी कच्ची उम्र से ही हम एक दूसरे की चेतना का हिस्सा हो गये थे और किसी दूसरे की बात भी नहीं सोच पाते थे।''[8]

राजेन्द्र यादव जी ने आस्था और अविश्वास की आंख–मिचौनी, सामाजिक व्यक्तित्व को लेकर विरक्ति, सम्बन्धों में स्थायित्वहीनता, एक–दूसरे की खोज, प्रेमिका में अपनत्व का भ्रम आदि विचारों के संगुम्फन में मीता के सम्बन्धों का पर्दाफ़ाश किया है –''हमारे बीच वह क्या है हम एक छत के नीचे नहीं आ सके और आज भी एकान्त भोग रहे है। हफ्तों साथ भी रहे हैं और बरसों असंवादी भी।''[9]

पुरुष व्यक्तित्व के अनुद्घाटित आयामों को खोलते हुए रचनात्मक ऊर्जा का नवीनीकरण करके महिलाओं की संगति के सन्दर्भ में राजेन्द्र जी ने अपनी विचारधारा का सम्यक् निरुपण किया है–"मगर प्रारम्भिक देह जिज्ञासा की उम्र गुज़रने के बाद वास्तविक सैक्स मेरी दिलचस्पी का केन्द्र कभी नहीं रहा। इसीलिए बीसियों सालों से मित्रताएँ आज भी मेरा सहारा है। इसी भावात्मक अकुंठ मैत्री की चाह हमेशा बनी रहती है, वे पुरुष की अपेक्षा ज्यादा निर्भरणीय होती है।''[10]

महिला मित्रों के प्रति परिभावना स्पष्ट करते हुए राजेन्द्र जी ने स्वीकार किया है कि दीदी मेरे हर सम्बन्ध को भी संचालित कर रही थी और मीता से सम्मिलन की स्थिति में भी सहयोगी रहीं तथा कमल कश्यप की मित्रता पर भी उन्होंने तूफ़ान खड़ा किया। यादव जी ने कमल के साथ अपने सम्बन्धों को सूत्रबद्ध करते हुए स्पष्ट किया है–"जब कमल कश्यप मेरे साथ आकर रहने लगी..... अकसर वह मेरे कमरे में चक्कर लगाती..... मैं उन्हें अन्दर के अंधेरों से बाहर निकालना चाहता था..... अब सहसा ही मेरा कमरा साफ और सलीके से रहने लगा।''[11] "इस कमल प्रसंग पर दीदी से लेकर और मित्रों तक ने ऐसा हंगामा खड़ा कर दिया– सुशीला जी और भाभी जी ने तो घोषित कर दिया कि 'राजेन्द्र जी का दिमाग खराब हो गया है।''[12]

राजेन्द्र जी का महिला मित्रों के साथ पत्र–व्यवहार का क्रम निरन्तर चलता रहा। पत्रों के माध्यम से कीर्ति के प्रति राजेन्द जी की सहानुभूति, आश्वासन, आस्था, आत्मीयता सहज उद्भासित होती है –"कीर्ति वहीं भुवाली में थी डेढ़वर्ष के बाद भी मैं कीर्ति को नहीं देखा था..... हम लोगों में आत्मीयता पनप आई थी।"[13] "चलते समय कहा भी "कीर्ति, तुम जरूर ठीक हो जाओगी। बीमारी को भी शायद तुम इसी

तरह बहकाकर अपने पड़ोसियों पर डाल दोगी..... उसकी हंसी देर तक..... शायद आज तक गूँजती रही ..... ।"[14]

इस आत्मकथा के अन्तर्गत जीवन की भौतिकता व भावनात्मकता के समृद्ध होने के इतिहास को राजेन्द्र यादव जी ने रेखांकित किया है एवम् अविश्वास व विश्वास की द्वन्द्वात्मकता को भी उकेरा है। अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण क्षणों को पाठकों के साथ आबंटित करते हुए अपने को जिम्मेदारियों से भागने वाला इन्सान बताया हैं। राजेन्द्र जी ने मन्नू जी के साहस को स्वीकारने का परिचय इस आत्मकथा में विस्तारित किया गया है–"इस दृष्टि से कलकत्ता मेरा सबसे बड़ा उपचार केन्द्र रहा। इसे मैं मन्नू का असाधारण साहस ही कहूँगा कि उसने कलकत्ते के बन्द समाज में खुलेआम भी आजकल कोई नहीं जानता, मगर मन्नू बाई साब ने क्या सोचकर लंगड़े आदमी को चुना।"[15]

स्मृति का अवलम्बन लेकर गुज़रे हुए अतीत को राजेन्द्र यादव जी ने तरतीबबद्ध किया है । अतीत के उन अंशो को चयनित किया है जो उनके जीवन को गतिशील बनाए हुए हैं। राजेन्द्र जी ने अपने प्रति दूसरो के अविश्वास व स्वयं के विश्वास के द्वन्द्व में 60 वर्षों का जीवन बिताया है। उनकी आत्मकेन्द्रिकता ने उत्तरदायित्वहीनता के प्रकट करते हुए प्रतिकूल परिस्थितियों में पत्नी के उपेक्षा भाव को उजागर किया है–"लेकिन मन्नू अपना सारा ध्यान घर में ही लगाती है और मेरा सारा ध्यान घर व अपने में ही केन्द्रित चाहती है अगर ऐसा नही तो उसकी उपेक्षा है..... ।"[16]

भारतीय संस्कृति में परिवार को व्यापक फलक पर चित्रित किया गया है जिनमें गार्हस्थ्य भावना की पारिवारिक व्यापकता प्रकट होती है। पाश्चात्य संस्कृति के परिणास्वरूप समाज में पति–पत्नी के मध्य स्थान–निर्धारण का संघर्ष बना हुआ है। पत्नी पति की सहभागी के रूप में सम्बन्ध निर्वाह करना चाहती है किन्तु समाज में पुरुष का दुहरा दृष्टिकोण सम्बन्धों में निरीहता उत्पन्न कर देता है। इस अवस्थिति को राजेन्द्र जी ने स्पष्ट अभिव्यंजित किया है–''मन्नू कहती है इसमें अहं तृप्त होता है..... ये–ये बातें न हों तो बहुत ही अच्छे हैं..... मै मान लेता हूँ कि उसके भाग्य में अच्छा पति पाना नहीं– एक बार अच्छा पति पाने की सलाह देकर सो जाता हूँ।"[17]

राजेन्द्र जी ने पारिवारिक नियन्त्रण हेतु बच्चों के पालन पोषण व संरक्षण, भोजन–वस्त्र व्यवस्था आदि कार्यों से विच्छिन्नता का प्रारूपगत निरूपण किया है–"टिंकू की देखभाल से लेकर घर की जिम्मेदारी, उसने ही निभाई कॉलेज, ट्यूशन टिंकू फिर अपना लिखना, मेहमानों मित्रों का आना जाना..... सभी कुछ तो उसी का जिम्मा था। मन्नू का विद्रोह तब युग शुरु हुआ। जब उसने पाया..... मैं घरेलू जिम्मेदारी से हाथ झाड़ कर अलग हो जाता हूँ।"[18]

पति पत्नी के सम्बन्धों की दृढ़ता का आधार एक दूसरे की भावनाओं का सम्मान करना है। राजेन्द्र जी ने मन्नू जी के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए स्वभावगत परिचय दिया है–मन्नू बहुत खुले दिल से हंसती है और मुझे उसकी हंसी पसन्द है। उससे भी सहज कहानियाँ लिखती हैं एक के बाद दूसरी। पत्नी के स्वभाव में परिवर्तन की जिम्मेदारी राजेन्द्र जी ने स्वयं पर आरोपित की है। पत्नी से अलगाव के उपरान्त स्वयं से पत्नी को प्रतिदान न दे पाने की असमर्थता का उल्लेख किया है–''मन्नू ने पहले मेरी इन हरकतों को प्यार, सहानभूति, सहिष्णुता से सुधारने या समझने की कोशिश की फिर विरोध या विद्रोह शुरू हुआ....उसका प्रतिदान शायद मेरे लिए असंभव है।''[19]

पत्नी से विलग होने पर राजेन्द्र जी ने भावधारा को विचारधारा में परिणित करना चाहा। राजेन्द्र जी ने मन्नू के स्वभाव की विराटता का प्रत्यंकन करते हुए जमीनी सच्चाइयों से जीवन में ठहराव व गहराई का भी चिन्तन मनन भी किया है। पत्नी के प्रति राजेन्द्र जी द्वारा किये गये अन्याय को अपराध–बोध के रूप में रूपायित किया गया है। राजेन्द्र यादव जी ने अपनी जीवन शैली में दोस्ती की अनिवार्यता पर बल दिया है तथा अपनी ज़िन्दगी को अन्य के प्रति दस्तावेज़ित भी किया है–''आत्मकेन्द्रिकता ने न मुझे अच्छा पति रहने दिया, न पिता, न प्रेमी–सिर्फ मैं दोस्त ही अच्छा हूँ। क्योंकि दोस्ती किश्तों में निभाई जाने वाले जिम्मेदारी है..... 24 घंटों या पूरी ज़िन्दगी तो मैंने कहीं और दे रखी है वहाँ पता नहीं उसका कुछ बना है या नहीं।''[20]

महानगरों में वासित पति–पत्नी के आपसी सम्बन्धों में बदलाव दृष्टिगत हो रहा है, जो बदलते हुए परिवेश का प्रतिरूप है। राजेन्द्र जी ने पारिवारिक तनाव को कम करने हेतु 42 साल की वैवाहिक ज़िन्दगी में अलग होने के स्वतन्त्र प्रयोगों पर भी कार्यान्वयन किया तथा पत्नी के जीवन में यन्त्रणा की पुनरावृत्ति का भी अवलोकन किया है–''आज तो बेटी भी कहती है कि आप लोगों को बहुत पहले अलग हो जाना चाहिए था। यह दो पीढ़ियों की मानसिक बनावट का अन्तर है।''[21]

राजेन्द्र यादव जी की पत्नी ने प्यार, सहानुभूति, सहिष्णुता से उन्हें सुधारने की कोशिश की तथा उनके विचार में राजेन्द्र जी की क्रान्तिकारी मौलिकता लम्पटता का विस्तारण करके वैचारिक भ्रष्टाचार में परिणित हो गई। मानवीय सम्बन्धों के समक्ष राजेन्द्र जी ने अपने बौनेपन का इज़हार करके स्व' को प्रक्षेपित करते हुए अपरिहार्य व अनिवार्य मानने के मुग़ालते का भी वर्णन किया है।[22] अपने जीवन में रचना प्रक्रिया की अनिवार्य आवश्यकता पर बल देकर रातों की नींद, आँखों की रोशनी, दिमागी शान्ति का अमूर्त्तन किया है। पुरुष व्यक्तित्व के अनुद्घाटित आयामों को खोलते हुए घर की लालसा, निर्बन्ध उत्तरदायित्वहीनता, रचनात्मक ऊर्जा का नवीनीकरण, विरोधी सैक्स या महिलाओं की संगति के सन्दर्भ परिभावना स्पष्ट करते हुए अपनी विचारधारा का सम्यक् निरुपण किया है। राजेन्द्र जी ने दूसरो के अविश्वास व स्वयं के विश्वास के द्वन्द्व में 60 वर्षों का जीवन बिताया एवम् जीवन की भौतिकता व भावनात्मकता के समृद्ध होने के इतिहास को रेखांकित करते हुए अविश्वास व विश्वास की द्वन्द्वात्मकता को भी उकेरा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

1. कमलेश सिंहः हिन्दी आत्मकथाःस्वरूप एवं साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1989

2. बैजनाथ सिंहलः हिन्दी विधाएं स्वरूपात्मक अध्ययन, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, 1988

3. विनीता अग्रवालः हिन्दी आत्मकथाएँः सिद्धान्त एवं स्वरूप विश्लेषण, सचिन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989

4. शान्ति खन्नाः आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली,1943

5. विश्वबन्धु 'व्यथित': हिन्दी का आत्मकथा साहित्य, राधा प्रकाशन, दिल्ली, 1989

6. राजेन्द्र यादवः मुड़–मुड़ के देखता हूँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001 पृ0115

7. वही, पृ0 116

8. वही, पृ0 121

9. वही, पृ0 122

10. वही, पृ0 123

11. वही, पृ0 104

12. वही, पृ0 105

13. वही, पृ0 108

14. वही, पृ0 44

15. वही, पृ0 48

16. वही, पृ0 127

17. वही,पृ0 44

18. वही पृ0 129

19. वही, पृ0 99

20. वही, पृ0 18

21. वही, पृ0 130

22. राजेन्द्र यादवः एक दुनिया समानान्तर, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1961

.

.

.